PAIRVI OCCASIONAL PAPER SERIES

March 2010

मैला ढोने की प्रथा अब भी कायम

– रजनीश श्रीवास्तव

भारत की आबादी फ़िलहाल सवा अरब के आस–पास है। इस सवा अरब की आबादी में लगभग 20 प्रतिशत आबादी दलित समुदाय की है और ऐसा अंदाज़ा है कि इसमें से तकरीबन तीन लाख से अधिक लोग मैला साफ करने के कार्य में संलग्न हैं। वर्तमान में शासकीय तौर पर यह प्रक्षेपित किया जा रहा है कि देश में अब कहीं भी मैला ढोने वाले लोग नहीं है क्योंकि इस कार्य में लगे सभी परिवारों को पुनर्वासित किया जा चुका है। परंतु कई अन्य सचों की तरह यह भी महज़ एक कागज़ी और सरकारी सच है जो वास्तविकता से कहीं परे है।

भारतीय समाज में सदियों से चली आ रही यह परंपरा किस हद तक घृणित है इसका अंदाज़ा इस बात से सहज ही लगाया जा सकता है कि जब एक मनुष्य अपना ही मैला हटाने में घिन महसूस करता है तब एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य का मैला साफ करने में कैसा महसूस होता होगा। यह एक विडम्बना ही है कि हमारा समाज इस कार्य को घृणा की दृष्टि से देखने के बजाय इस कार्य को करने वालों से घृणा करता है। उन्हें अछूत, अस्पृष्य मानता है और बाकी समाज के साथ उनके व्यावहारिक संबंधों को सीमित करता है। यह एक अलग बात है कि संवैधानिक तौर पर सबको बराबरी का दर्जा दिया गया है और सरकारें इस बराबरी को यथार्थ में बदलने के लिए प्रयत्नशील रही हैं। सफाई कर्मचारी नियोजन और शुष्क शौचालय सन्निर्माण (प्रतिषेध) अधिनियम 1993 और 1997 में गठित सफाई कर्मचारी वित्त विकास निगम इसी प्रयत्न का एक हिस्सा हैं, जिनके द्वारा मैला ढोने के कार्य में लगे लोगों को मुख्य धारा में शामिल करने की सोच और कार्यक्रम सरकार ने प्रस्तुत किये। आज की तारीख़ में इन कार्यक्रमों को सफलता के नए मापदण्ड स्थापित करते हुए उल्लेखित किया जा रहा है जबकि स्थिति यह है कि आज भी बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तराखण्ड, पंजाब में बहुतायत में

लोग मैला ढोने का काम कर रहे हैं। देश के अन्य राज्यों में भी तकरीबन यही स्थिति है। ऐसी स्थिति में सरकार का यह दावा करना कि देश में अब कहीं मैला ढोने वाले लोग नहीं हैं या मैला ढोने वाले सभी परिवारों को पुनर्वासित किया जा चुका है योजनाओं/कानूनों के क्रियान्वयन व विकासोन्मुखी सोच पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करता है।

पिछले समय में राष्ट्रीय सफाई कर्मचारी वित्त विकास निगम द्वारा पूरे देश में मैला ढोने के काम में लगे लोगों को पुनर्वासित करने की मुहिम चलाई गई। इस मुहिम में लोगों को चिन्हित कर उन्हें रोज़गार हेतु रियायती ब्याज दर पर बैंक से लोन व अनुदान स्वरूप विभाग से राशि मुहैया कराई गई ताकि लोग इस घृणित कार्य को छोड़कर किसी अन्य रोज़गार से अपनी आजीविका प्राप्त कर सकें। इस कार्यक्रम के आधार पर सरकार ने दावा किया कि मार्च 2010 के अंत तक सम्पूर्ण भारत में मैला ढोने के कार्य में लगे लोग पुनर्वासित कर दिये जाऐंगे और मार्च 2010 के अंत तक लगभग सभी राज्यों ने इस बात लिखित घोषणा भी कर दी कि अब राज्य में कोई भी मैला ढोने का काम नहीं करता, सबको पुनर्वासित किया जा चुका है। पर यह घोषणा कितनी खोखली है इसका अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि उत्तर प्रदेश के अकेले बरेली शहर में ही तकरीबन 300 लोग अभी भी यह कार्य कर रहे हैं।

इस पुनर्वास योजना में भी अन्य कई योजनाओं की तरह ही भ्रष्टाचार का बोलबाला है। दूसरे इसकी क्रियान्वयन प्रक्रिया में भी कई कमज़ोरियाँ हैं, जिनमें से सबसे अहम यह है कि बड़े पैमाने पर परिवार के पुरुष सदस्य को राशि उपलब्ध कराई गई है जबकि मैला ढोने का काम मुख्यतः परिवार की महिलाएँ करती हैं। ग़रीब पारिवारिक संरचना में पैसे पर पुरुष के अधिकार से महिलाओं की स्थिति में कितना सुधार होता है इसकी व्याख्या करने की शायद आवश्यकता नहीं है। दूसरी ओर सामाजिक संरचना भी इस पुनर्वास को बाधित करती है। इस पेशे में लगे लोगों द्वारा अन्य रोज़गार स्रोतों को अपनाने के पिछले अनुभव यह प्रदर्षित करते हैं कि दूसरा रोज़गार अपनाने से भी उनकी स्थिति नहीं बदली है अलबत्ता परेशानियों का ही सामना करना पड़ा है। ''हम सब्जी का ठेला भी लगाऐंगे तो हमसे ख़रीदेगा कौन?'' या ''हमारी परचून की दुकान से बस हमारे समाज के ही लोग सामान ख़रीदते हैं, इतने से में क्या फायदा होता है?'' जैसे प्रश्न दूसरा रोज़गार अपनाने वाले लोगों ने खड़े किये हैं, जो यह स्पष्ट करते हैं कि सिर्फ़ दूसरा रोज़गार अपना लेने से ही स्थितियाँ नहीं बदल जातीं।

मैला ढोने वालों के पुनर्वास से जुड़ा एक महत्वपूर्ण पहलू शुष्क शौचालयों की मौजूदगी है। स्वाभाविक है कि जब तक शुष्क शौचालयों का अस्तित्व है तब तक कोई न कोई उनकी सफाई करेगा। आज सारे मैला ढोने वाले लोगों को पुनर्वासित कर भी दिया जाता है और शुष्क शौचालय बचे रहते हैं तो निश्चित है कि कल एक नया आदमी उनकी सफाई करेगा।

शुष्क शौचालयों पर प्रतिबंध का कानून और समग्र स्वच्छता अभियान के बावजूद आज भी कई शुष्क शौचालय मौजूद हैं। शुष्क शौचालयों को जल प्रवाहित शौचालयों में परिवर्तित करने की योजना के तहत निर्धारित ड्राइंग व डिज़ायन के अनुसार शौचालय निर्माण की कुल लागत सरकार 5720 रुपये आंकती है, जिसमें से ग़रीबी रेखा के नीचे आने वाले परिवारों को 45 प्रतिशत (अधिकतम 2574 रुपये) तक की राशि सरकार द्वारा अनुदान दी जाती है। यानि बाकी की 55 प्रतिशत (3146 रुपये) की लागत परिवार को वहन करनी पड़ती है। यहाँ यह देखना ज़रूरी हो जाता है कि आज भी शुष्क शौचालय किस प्रकार के घरों में मौजूद हैं। इनमें अधिकांश वैसे घर हैं जो ग़रीबी की जबरदस्त मार झेल रहे हैं, जिनमें से अधिकांश की आजीविका मज़दूरी पर निर्भर है और जिनकी कुल मासिक आमदनी ही अधिकतम 3–4 हजार रुपये है। जो परिवार 100 रुपये प्रतिदिन पर जीवन–यापन करता है उसके लिए 3146 रुपये वहन करना भी एक बड़ी समस्या है। नतीजतन जल प्रवाहित शौचालय की कल्पना साकार न हो सकी, शुष्क शौचालयों का अस्तित्व है और परिणामस्वरूप मैला साफ करने वालों का भी।

मैला साफ करने के घृणित कार्य को समाप्त करने और इस कार्य में लगे लोगों के सफल पुनर्वास के लिए आवश्यक है कि इन संचालित योजनाओं को दुरुस्त किया जाए। इस बात की आवश्यकता है कि इस कार्य में लगे लोगों की सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर योजना में बदलाव किये जाएँ। लोगों को व्यक्तिगत स्तर पर ऋण या अनुदान देने से बेहतर होगा कि रोज़गार की ऐसी संरचना स्थापित की जाए जिसमें उस वर्ग के कौशल का उपयोग किया जा सके। उन्हें प्रशिक्षित कर ऐसे सामुहिक रोज़गार उपलब्ध कराने कराने का प्रयास किया जाना चाहिए जो कि समाज की घृणा दृष्टि से प्रभावित न हों। शुष्क शौचालयों को जल प्रवाहित शौचालयों में परिवर्तित करने में भी इस बात को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि परिवार की आर्थिक स्थिति क्या है और वह कितनी लागत वहन करने में सक्षम है। हालांकि वर्तमान क्रियान्वयन व्यवस्था में इसकी सफलता भी सौ प्रतिशत निश्चित नहीं है परंतु इस दिशा में सोचे बिना मैला ढोने के काम को पूर्णतः समाप्त कर पाना असंभव होगा।